श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

श्री आनन्दपुर

अक्तूबर १९९५

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

अधिपति

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी

श्री आनन्दपुर

सम्पादकः—महात्मा सुख सागरानन्द

अक्तूबर १९६५

	समुद्री डाक द्वारा	हवाई डाक द्वारा
वार्षिक शुल्क भारत में		२४–००
पाकिस्तान	६०–००	१५६–००
(ए. पी. पी. यू.) सिंगापुर जापान आदि देशों के लिए	७२–००	२२८–००
(यू. के.) (यू. एस. ए.) व अन्य देशों के लिए	८४–००	२४०–००

विषय तालिका

आनन्द सन्देश अक्तूबर १९९५

अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या

प्रकाशक—श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी आनन्द प्रिंटिंग प्रैस में छपवा कर आनन्द सन्देश कार्यालय श्री आनन्दपुर ज़िला गुना (म० प्र०) से प्रकाशित किया।

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का मासिक

आनन्द सन्देश

श्री आनन्दपुर

अक्तूबर सन् १९९५ ई० सौर कार्तिक सं० २०५२ वि०

वर्ष ४३] [अंक १०

अथ

श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस गुरुदेव जी, सकल विश्व आधार ।
पुनि पुनि दण्डवत वन्दना, श्री युगल चरणार ॥

करूँ अर्पित गुरु चरण में, श्रद्धा प्रेम के फूल ।
जिनकी कृपा से दूर हों, विपदाओं के शूल ॥

निर्बल के बल सतगुरु, करते सदा सहाय ।
उत्पीड़न से काल के, लेते तुरत बचाय ॥

निराकार साकार भये, श्री परमहंस अवतार ।
कर्णधार भवसिन्धु के, करते भव से पार ॥

सतगुरु वचन प्रताप से, घट में होत उजास ।
मोह भरम अज्ञान का, गहन तिमिर हो नास ॥

जो आवे गुरु शरण में, ताके भाग्य हैं धन्य ।
परमहंस गुरुदेव सम, नहीं देव कोइ अन्य ॥

सेवा सतगुरुदेव की, करै जो मन चित्त लाय ।
आधि व्याधि सब ही टले, आवागमन नसाय ॥

दीन दुखी के हैं सखा, हैं अनाथ के नाथ ।
श्रद्धा से सुमिरण किये, सदा रहें संग साथ ॥

मोह ममता के जाल में, फँसा जीव अकुलाय ।
चरण शरण जिसने गही, सो निश्चय बच जाय ॥

परम हितैषी गुरु सम, नहीं सकल संसार ।
बिगड़ी जनम अनेक की, गुरु संवारनहार ॥

गुरु के सुमिरण ध्यान से, नाशत विघ्न अनेक ।
कलह कलपना सब मिटे, गहे गुरु की टेक ॥

जिसके हिरदे में बसे, गुरु की पावन प्रीत ।
अंग संग ताके रहें, सतगुरु साचे मीत ॥

सौभागी सो जीव है, गुरु चरणन चित लाय ।
सतगुरु की अनुकम्पा से, सुख में रहे समाय ॥

जाके मन विश्वास है, ताके सब दुख दूर ।
बाल न बांका कर सके, ताका काल क्रूर ॥

सकल जगत है जल रहा, कामादिक की आग ।
सोई बचा जाके हृदय, गुरु चरणन अनुराग ॥

ज्यों चकोर के मन बसे, सदा चन्द्र की प्रीत ।
तैसे ही तव चरण में, रहे 'दास' का चीत ॥

इति शुभम्

शुभ सूचना

१–दशहरा (विजयादशमी) ३ अक्तूबर सन् १९९५ ई० मंगलवार

२–कार्तिक सं० २०५२ वि० की संक्रान्ति १७ अक्तूबर सन् १९९५ ई० मंगलवार

३–दीपावली २३ अक्तूबर सन् १९९५ ई० सोमवार

४–मार्गशीर्ष सं० २०५२ वि० की संक्रान्ति १६ नवम्बर सन् १९९५ ई० गुरुवार

श्री परमहंस अमृत कथा

श्री प्रथम पादशाही जी महाराज का अमर जीवन

(गतांक से आगे)

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस दयाल को, दण्डवत् लाख करोरि ।
श्रद्धासहित श्री चरण में, वन्दना दोउ कर जोरि ॥
श्री परमहंस दयाल जी, जगत्पति जगदीश ।
कोटि कोटि मम वन्दना, धर चरणन में शीश ॥
महिमा सतगुरुदेव की, अनुपम उच्च महान ।
गुण गौरव गायन किये, निश्चय हो कल्यान ॥
सतगुरु के पावन वचन, सद्ग्रन्थों का सार ।
तिमिर मिटे अज्ञान का, ले जो हिरदे धार ॥
शरण मिली गुरुदेव की, हुआ दास यह धन्य ।
निज चरणों की हे प्रभो, बख्शो भक्ति अनन्य ॥

श्री परमहंस अद्वैतमत के महान् प्रवर्तक, भक्तवत्सल, पूज्यपाद श्री परमहंस दयाल जी श्री श्री १०८ श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी श्री प्रथम पादशाही जी महाराज के परम पावन श्री चरणारविन्दों में दासानुदास का श्रद्धासहित कोटिशः दण्डवत्-प्रणाम है ।

एक दिन श्री वचन हुए कि कुछ लोग ऐसी आपत्ति उठाते

हैं कि कुल मालिक अवतार रूप धारण नहीं कर सकता और देह रूप में नहीं समा सकता, क्योंकि यदि वह देह में समावे तो उसका लोक खाली हो रहेगा। इसका उत्तर यह है कि बड़ी-बड़ी नदियां जो समुद्र से मिली हुई हैं, जिस समय ज्वार-भाटा उठता है तो समुद्र का जल नदियों में मीलों तक आ जाता है और घंटों तक नदियों में रहकर फिर वापस समुद्र में चला जाता है तो क्या उस समय समुद्र खाली हो जाता है? कदापि नहीं। अपितु नदी और समुद्र दोनों में समुद्र का जल ठाठें मारने लगता है और नदी के जल का स्वाद समुद्र के जल की तरह खारी हो जाता है। इसी प्रकार कुल मालिक भी जब अवतार धारण करता है तो देह और संसार—सब स्थानों पर उसी प्रकार भरपूर रहता है।

एक दिन श्री वचन हुए कि किसी ब्राह्मण के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिष विज्ञान से ज्ञात हुआ कि यह चोर बनेगा। ब्राह्मण ने उसको बचपन से ही अच्छी शिक्षा देनी प्रारम्भ की और सन्तों का खूब सत्संग कराया। रोचक, भयानक और यथार्थ—तीनों प्रकार के शास्त्र पढ़ाये। वह ब्राह्मण राजा के महल में पूजा और कथा-कीर्तन के लिए प्रायः जाया करता था।

कुछ दिन के बाद ब्राह्मण की तो मृत्यु हो गई और लड़के को युवा होते होते कर्म के संस्कार से चोरी की लत पड़ गई। पंडिताई के कारण राजा के महल में उसका आना-जाना तो था ही, एक रात राजा के विश्राम कक्ष में जा पहुँचा। जिस वस्तु को हाथ लगाता तो उसको याद आ जाता कि इस वस्तु का चुराने

का यह दण्ड है, इस कारण उस वस्तु को रख देता। इसीप्रकार से उसने अनेकों मूल्यवान् वस्तुएँ उठाकर और उनका सत्संग तथा शास्त्र विचार के अनुसार दण्ड सोचकर उन्हें वापस रख दिया। किसी वस्तु का फोक पड़ा हुआ था, अन्ततः उसको बेकार समझकर उठा लिया कि इसका कुछ दण्ड न होगा। उस फ़ोक को लेकर चलने लगा कि राजा, जो उस समय स्वप्न देख रहा था, स्वप्न में बड़बड़ाने लगा कि यह वस्तु भी मेरी है और वह वस्तु भी मेरी है। लड़का पास खड़ा हुआ सुनता रहा, अन्त में बोल उठा कि जब आँखें बन्द हुई तो अपना कुछ भी नहीं।

राजा ये शब्द सुनकर चौंक पड़ा। नींद खुल गई। राजा ने अन्धेरे में ही पूछा—"तू कौन है ?"

उसने कहा—"मैं चोर हूँ।"

तब तक द्वार पर खड़े सैनिक भी अन्दर आ गये और लैम्प जलाया। तब राजा ने उस लड़के को पहचाना। तलाशी लेने पर उसके पास से फोक निकला। राजा ने कहा—"तुमने ऐसी बेकार वस्तु किसलिए चुराई ? यहाँ तो अनेकों प्रकार की मूल्यवान् वस्तुएँ रखी हैं।"

उस लड़के ने अपने विचार कह दिये। यह सुनकर राजा ने उसको क्षमा कर दिया, क्योंकि वह समझ गया कि यह कर्मों से विवश है, अन्यथा पूरा सत्संगी और जानकार है।

सच है—सत्पुरुषों की संगति अर्थात् सत्संगति अपना प्रभाव दिखाये बिना कदापि नहीं रहती।

एकदिन श्री वचन हुए कि यदि कोई मन या दो मन बोझा

खाली सिर पर उठावे तो उसको कष्ट होता है और गर्दन टूटने लगती है, परन्तु पाँच-छः सेर की ठेकी (जिसे प्रायः बोझा ढोनेवाले श्रमिक उपयोग में लाते हैं) गर्दन के नीचे (पीठ पर) लगाकर ढाई मन की बोरी भी सुगमता से उठा लेता है। यद्यपि उस ठेकी के कारण श्रमिक के बोझे में वृद्धि हो जाती है, परन्तु बोझा बंट जाता है और उठाने में सुविधा होती है।

इसी प्रकार सत्संग में जाने से समय अवश्य खर्च होता है और वह समय सांसारिक कार्य-व्यवहार की व्यस्तता में से ही निकालना पड़ता है, परन्तु सत्संग में समय लगाने से सांसारिक कार्यों में अधिक उलझन उत्पन्न नहीं होती, अपितु प्रत्येक कार्य और दुःख-सुख के अवसर पर सत्संग भी ठेकी की तरह उनको बँटा लेता है और दुःख सुख का सब बोझा सत्संगी भक्त पर नहीं पड़ता।

एक दिन श्री वचन हुए कि श्री शिवजी महाराज और पार्वती जी महारानी सैर को जा रहे थे कि शिवजी ठहर गये और धरती पर माथा टेककर उस स्थान को नमस्कार किया। पार्वती जी ने कारण पूछा तो फ़रमाया कि यहाँ पर एक महात्मा ने भजन किया था, इसलिए यह स्थान आदर योग्य है।

इसी प्रकार आगे जाते हुए फिर एक स्थान पर माथा टेक कर नमस्कार किया। तब फिर पार्वती जी ने कारण पूछा तो शिवजी महाराज ने फ़रमाया कि यहाँ पर एक महात्मा आकर भजन करेंगे, इसलिए इस स्थान को भी आदर योग्य समझना चाहिये।

एक दिन एक व्यक्ति ने श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में विनय की कि लंगर और भंडारों का काम तो व्यर्थ का खर्च ही मालूम होता है। इससे क्या लाभ होता है ? यूँही मुण्ड-मुण्ड साधु आकर खा-पी जाते हैं।

यह सुनकर श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि किसी राजा ने यह सुना कि मानसरोवर में हंस होते हैं और वे मोती चुगते हैं। वहाँ पर और भी हज़ारों तरह के पक्षी रहते हैं, परन्तु वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है, इसलिए हर एक व्यक्ति का रहना वहाँ सम्भव नहीं। यह सुनकर उस राजा के मन में हंसों को देखने का चाव उत्पन्न हुआ। उसने अपने चतुर मंत्री को बुलाकर अपना विचार प्रकट किया। उसने निवेदन किया कि मैं हंसों के दर्शन तो आपको यहीं पर करा सकता हूँ, परन्तु इस में इतना अधिक व्यय होगा कि आप घबरा जायेंगे और आश्चर्य नहीं कि लोगों के कहने-सुनने से आपके मन में मेरे प्रति गलत धारणा उत्पन्न हो जावे।

राजा ने उसे हर प्रकार से विश्वास दिलाया और कहा कि चाहे जितना धन व्यय हो, परन्तु हमको हंसों के दर्शन यहीं करा दो। मंत्री ने वन में पक्षियों को दाना डलवाने का प्रबन्ध करवाया और भांति-भांति का अनाज और ग़ल्ला वन में प्रतिदिन डाला जाने लगा और हर प्रकार का प्रबन्ध उनकी सुविधा का कर दिया गया। राजा का आदेश हो जाने के कारण कोई उन पक्षियों को कष्ट नहीं पहुँचा सकता था। इस सुविधा के कारण देश-देश के पक्षी वहां आकर एकत्र हो गए यहां तक कि मानसरोवर तक के पक्षी उड़-उड़कर वहां चले आए और

मानसरोवर खाली सा दिखाई देने लगा तो एक दिन एक हंसिनी ने हंस से इसका कारण पूछा। उसने सब हाल कह दिया कि अमुक देश में पक्षियों के खाने-पीने और रहने का बहुत अच्छा प्रबन्ध है, इसलिए सब पक्षी वहां चले गए। अब तो हंसिनी ने हंस को भी वहां जाने के लिए बाध्य किया कि ऐसे धर्मात्मा और उदार व्यक्ति का, जो पक्षियों तक की देख-रेख करता है, अवश्य दर्शन करना चाहिये। दोनों मानसरोवर से उड़कर उस राजा के देश में आए और मंत्री ने राजा को उनका दर्शन कराया।

यह कथा सुनाकर श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि जब मनुष्य भंडारे आदि में धन व्यय करता है और प्रत्येक धर्म एवं संप्रदाय के साधुओं का आना-जाना बना रहता है तो उसकी उदारता तथा धर्म का हाल सुनकर कभी न कभी हंस और परमहंस भी वहाँ आ ही जाते हैं और भंडारा करने वाले व्यक्ति को आत्मिक धन से मालामाल कर देते हैं।

एक दिन श्री वचन हुए कि कोई ब्राह्मण तेरह वर्ष तक विद्या पढ़कर जब बनारस वापस आया तो वाद-विवाद के विचार से श्री कबीर साहिब से मिलने गया। श्री कबीर साहिब ने उस की बड़ी आवभगत की और उसको सूखा सीधा देकर कहा कि महाराज जी! पहले आप भोजन बना कर पा लीजिये।

ब्राह्मण ने सीधा लेकर मकान को चारों ओर से देखा, परन्तु चौके के योग्य कोई पवित्र स्थान दिखाई न दिया। कहीं ताना तन रहा था, कहीं मक्खियां भिनक रही थीं, अतएव मकान

के बाहर एक सरोवर के किनारे स्वच्छ स्थान देखकर चौका लगाकर ब्राह्मण देवता ने भोजन तैयार किया। जब वह भोजन पा चुका तो कबीर साहिब ने उसके चूल्हे के नीचे थोड़ी-सी धरती खोदकर ऊँट का हाड़ निकालकर उसको दिखलाया और कहा कि देखिये महाराज! आपने इस स्थान को पवित्र समझा था। अभी तेरह वर्ष में आपने बाह्य शुद्धता और पवित्रता की विद्या ही पढ़ी है, अब वह विद्या पढ़नी चाहिये जिससे अन्तः करण की अपवित्रता और पवित्रता का ज्ञान हो और यह ज्ञान पुस्तकों से प्राप्त नहीं हो सकता।

॥ शेअर ॥

दरकिन्ज़ हिदाया नतुवाँ याफ़्त खुदारा ।
दर मुसहफ़े-दिलवीं कि किताबे बे-अज़ीं नेस्त ॥

अर्थः—ज्ञान के भंडार में प्रभु को नहीं पाया जा सकता, इसलिए तू अपने हृदय की पुस्तक पढ़ कि इसके लिए इससे उत्तम पुस्तक और कोई नहीं।

और हृदय की पुस्तक का अध्ययन सदैव सन्त सत्पुरुषों की चरण-शरण में रहकर ही किया जा सकता है।

एक दिन श्री वचन हुए कि एक काज़ी साहिब को उनके पीर-ो-मुर्शिद (गुरु) ने कलमा "ला इलाह इल्लिल्लाह" विशेष युक्ति से पढ़ना बता दिया था और काज़ी साहिब ने भी उसका ऐसा विर्द (किसी बात को बार-बार दोहराना) रखा कि उठते-बैठते सदैव पढ़ा करते थे। एक बार यात्रा करते समय किसी गाँव में जाकर ठहरे। वहाँ के लोग उनके लिए दो-चार चने-

बाजरे की रूखी-सूखी मोटी रोटियां ले आए। काज़ी साहिब ने रोटियां ले लीं और उन्हें ढककर कलमा पढ़ा और प्रार्थना की कि ऐ खुदावन्द ! तू बड़ी शक्तिवाला है। सबको उनकी सामर्थ्य के अनुसार भोजन देता है, आज यह भोजन मुझको भी बख़्शा है। यह कहकर जब कपड़ा हटाया तो रोटी के स्थान पर भांति भांति के व्यंजन विद्यमान थे। कुछ तो काज़ी साहिब ने स्वयं खाये, शेष गाँव वालों को बाँट दिये।

गाँव वालों ने देखा कि इस कलमा को पढ़ने से सूखी रोटी के स्थान पर ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन बन गए हैं, यह कलमा तो हमको भी याद है, फिर रूखी रोटी क्यों चबायें ? कल से हम भी ऐसे ही व्यंजन मंगवा लिया करेंगे।

दूसरे दिन सूखी रोटियां पकवाकर और कपड़े से ढककर गांव के सब लोग बैठ गये और कलमा पढ़ना आरम्भ किया। फिर चादर उठाकर देखा कि रोटियों के स्थान पर क्या बना ? किन्तु वे रोटियां तो ज्यों की त्यों रखी थीं। फिर कलमा पढ़ा और फिर कलमा पढ़ा और इसी तरह रात बीत गई, परन्तु रोटियां ज्यों की त्यों ही रहीं। तब वे सब एक दूसरे से पूछने लगे कि क्या कमी रह गई ? तब एक वृद्ध व्यक्ति ने कहा—तुम लोग आज ही कलमा पढ़कर परिणाम देखना चाहते हो। काज़ी साहिब को न मालूम कितना समय अभ्यास करते हो गया तब कहीं यह बात प्राप्त हुई है।

भाव यह कि सब काम युक्ति और धारणा से ही सिद्ध होता है। सद्‌गुरु की युक्ति और शिष्य का अभ्यास—जब दोनों मिलते हैं तब फल की सिद्धि होती है, वरना योग, जप, तप आदि के

बारे में तो सब पुस्तकों में भी लिखा हुआ है और मौखिक रूप से सुनकर भी सहस्रों मनुष्य उसको जानते हैं, परन्तु न ही पुस्तकों से देखकर उनको सही ढंग से किया जा सकता है और न ही सही ढंग से किये बिना उनका कुछ फल मिलता है। सद्गुरु की शरण-संगति में रहकर जब युक्तिपूर्वक अभ्यास किया जाता है तब फल की सिद्धि होती है।

इसका अभिप्राय यह भी कदापि नहीं कि अभ्यास के प्रताप से मनुष्य सूखी और खुश्क रोटियों को स्वादिष्ट व्यंजनों में ही परिवर्तित करता रहे, अपितु विषय का गूढ़ भाव यह है कि मनुष्य सद्गुरु से अभ्यास की युक्ति सीखकर आत्म-साक्षात्कार करे, जोकि जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। सद्गुरु की संगति और उनके मार्गदर्शन में ही इस वास्तविक लक्ष्य की सिद्धि हो सकती है। इसके विपरीत जो देखा-देखी या पढ़ सुनकर योग साधना करते हैं और तत्काल फल की सिद्धि भी चाहते हैं, वे सदैव निराश ही रहते हैं और उनकी इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती।

रूहानी शब्द

१. तुम पर उपकारी हो,
बख़्शो भक्ति दान प्रभु, भक्ति के भण्डारी हो ।

२. तेरे दर की निष्काम सेवा,
श्रद्धा से जो करता, कटता चौरासी फेरा ।

३. जन्म जन्म तेरा साथ रहे,
तेरी रहमत का साया, मुझ पर हे नाथ रहे ।

४. प्रभु नाम जप ले प्राणी,
नाम जप जप लाखों तरे, कहती सन्तों की वाणी ।

५. सेवा गुरु दरबार करो,
गुरु चरणों से प्यार करो, कभी भी न अहंकार करो ।

६. दुनिया का सताया हूँ,
निज दास को ठौर बख्शो, भूला भटकाया हूँ ।

कल्याण मार्ग

जीना किसका सफल है ?

(३०१)

"संसार में कहने को तो सभी जी रहे और जीवन व्यतीत कर रहे हैं, परन्तु सन्तों सत्पुरुषों की दृष्टि में जीना उसी का सफल, सकारथ और सराहनीय है जिसके हृदय में प्रभु-नाम और प्रभु-भक्ति का निवास है।"

व्याख्या:—

सन्तों के वचन हैं कि:—

॥ दोहा ॥

जग में जीना है भला, जब लग हिरदे नाम ।
नाम बिना जग जीवना, सो दादू किस काम ॥

सन्त दादू दयालजी

संसार में जीना उसी का सकारथ है, उसी का जीवन संसार में सफल और सराहनीय है जिसके हृदय में प्रभु-नाम का निवास है जिसका चित्त प्रभु की भक्ति में, प्रभु के सुमिरण-ध्यान में जुड़ा हुआ है। जिसके हृदय में प्रभु का नाम नहीं, भक्ति नहीं, सन्त

दादूदयाल जी फ़रमाते हैं कि उस मनुष्य का जीवन किस काम का ?

जिस मनुष्य के हृदय में नाम का निवास नहीं, ऐसा मनुष्य तो जीवन के श्रेष्ठ, उत्तम और दुर्लभ अवसर को नाम के बिना, भक्ति के बिना, सुमिरण भजन के बिना व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है। ऐसे मनुष्य का तो संसार में जन्म लेना ही बेकार है। ऐसे भक्तिहीन मनुष्य के लिए तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने फ़रमाया है कि—

॥ चौपाई ॥

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना।
श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा।
लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला।
जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी।
जीवत शव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती।
सुनि हरि चरित न जो हरषाती॥

श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड

अर्थात् जो मनुष्य अपने कानों से भगवान् की कथा नहीं सुनते, उनके कानों के छिद्र साँप के बिल के समान हैं। जो

अपने नेत्रों से सन्त सत्पुरुषों के दर्शन नहीं करते, उनके नेत्र मोर के पंखों पर दीखने वाली नकली आँखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तूंबी के समान हैं जो श्री हरि और गुरु के चरणों पर नहीं झुकते। जो प्राणी भगवान् की भक्ति को अपने हृदय में नहीं बसाते, वे जीते हुए ही मुर्दे के समान हैं। जो जिह्वा भगवान् के गुणों का गान नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान व्यर्थ ही टर्र-टर्र करने वाली है। वह हृदय वज्र के समान कठोर और निष्ठुर है जो भगवान् के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता।

ऐसे प्रभु-भक्ति, प्रभु-नाम तथा प्रभु-प्रेम से विहीन मनुष्य के पास चाहे संसार के सारे गुण मौजूद हों तो भी सन्तों महापुरुषों की दृष्टि में उसका जीना-न जीना एक समान है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के वचन हैं किः—

अति सुंदर कुलीन चतुर मुख ङिआनी धनवंत ॥
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"कोई बहुत ही सुंदर, उच्च कुल का, चतुर, श्रेष्ठ वक्ता और धनाढ्य भी हो, परन्तु श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि यदि उसके हृदय में प्रभु-प्रेम नहीं है, तो उसे मृतक ही कहना चाहिये।"

कहने का तात्पर्य यह कि सन्तों महापुरुषों की दृष्टि में संसार में जन्म लेना और जीना उसी का सफल एवं सकारथ है जो परमात्मा की भजन-भक्ति में चित्त देता है और प्रभु-नाम का

सुमिरण करता है चाहे वह थोड़े दिन ही जीवित क्यों न रहे, इसके विपरीत यदि मनुष्य के हृदय में प्रभु की प्रेमस्वरूपा भक्ति नहीं, प्रभु-नाम नहीं तो फिर वह चाहे हज़ारों-लाखों वर्ष जीवित क्यों न रहे, उसका जीवन किस काम का ? नाम और भक्ति के बिना जो जीवन है, वह तो अकारथ है।

कहते हैं कि अजगर की आयु सैकड़ों-हज़ारों वर्ष की होती है। इसी प्रकार और भी कई जीव प्राणियों की आयु सैकड़ों-हज़ारों वर्ष बताई जाती है, परन्तु क्या उनका जीवन किसी लेखे में है ? नहीं, कदापि नहीं। ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी यदि नाम और भक्ति से विहीन है तो वह चाहे लाखों वर्ष की आयु क्यों न प्राप्त कर ले, उसका जीवन किसी लेखे में नहीं। इसके विपरीत उस मनुष्य का जीवन सफल और सकारथ है जो चाहे थोड़े ही दिन जीवित रहे, परन्तु जिसका जीवन नाम और भक्ति की लगन में बीते जैसा कि सत्पुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

जिवना थोड़ा ही भला, जो सत सुमिरण होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे गिने न कोय॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

लेखे में तो वही घड़ियाँ हैं जो सत्पुरुषों की संगति में रहते हुए नाम-सुमिरण और भक्ति-भजन में व्यतीत होती हैं। भक्ति-भजन के बिना जीवन बिताना तो मानो उत्तम और श्रेष्ठ मनुष्य-जन्म को व्यर्थ बरबाद करना है।

॥ दोहा ॥

कबीर संगत साध की, साहिब आवै याद ।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी दिन बरबाद ॥

परम सन्त श्री कबीर साहिब

यदि हम संसार की स्थिति का अवलोकन करें तो देखने में यही आता है कि आम संसारी मनुष्य, जिन्हें सन्तों सत्पुरुषों की शुभ संगति का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, नाम और भक्ति से अचेत रहकर अपना जीवन अकारथ कर रहे हैं। अपने मन का कहना मानकर वे दिन-रात खाने-पीने और शरीर-इन्द्रियों के तुष्टीकरण में ही लगे हुए हैं। उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य ही केवल यही कुछ समझ रखा है। जिस कार्यविशेष के लिए जीवात्मा को यह श्रेष्ठ मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है, उसकी ओर वे ध्यान तक नहीं देते। संसारी लोगों की तो यह हालत है कि:—

॥ दोहा ॥

इन्द्री स्वारथ सब किया, मन माँगे सो दीन्ह ।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछु न कीन्ह ॥
आये जगत में क्या किया, तन पाला कि पेट ।
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट ॥
रैन गवाई सोय करि, दिवस गवाया खाय ।
हीरे जैसा जन्म था, कौड़ी बदले जाय ॥

किन्तु विचार करने की बात यह है कि यदि मनुष्य ने सारा जीवन खाने-पीने और शरीर-इन्द्रियों के भोग भोगने में ही व्यतीत कर दिया तो फिर उसके जीवन की विशेषता और श्रेष्ठता

क्या हुई ? जैसे पशु अपना जीवन खाने-पीने और शरीर-इन्द्रियों के तुष्टिकरण में व्यतीत करके योनि भोग लेते हैं वैसे ही मनुष्य ने भी अपना जीवन व्यतीत कर लिया। फिर मनुष्य में और पशु में कोई अन्तर तो न रहा। पशुओं की तुलना में मनुष्य श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी तो न हुआ। श्रेष्ठता तो उसकी तभी है जब वह नाम और भक्ति की कमाई द्वारा आत्मा का कल्याण करके अपने जन्म को सफल करता है। यदि वह नाम और भक्ति से वंचित है तो फिर सन्तों महापुरुषों की दृष्टि में वह पशुतुल्य ही है। सत्पुरुषों के वचन हैं किः—

एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मन ॥
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तन ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"जिस प्राणी के मन में केवल एक चीज़—भगवान् की भक्ति नहीं है, श्री गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि उस व्यक्ति का शरीर शूकर और श्वान अर्थात् पशुओं सरीखा ही है।" ऐसे मनुष्य का जीवन तो अकारथ ही है जैसा कि कथन हैः—

गुन गोबिन्द गाइओ नहीं जनमु अकारथ कीन ॥
कहु नानक हरि भजु मना जिहि बिधि जल कौ मीन ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"ऐ मनुष्य ! यदि तुमने परमात्मा का स्तुति-गान नहीं किया, उसके गुणानुवाद नहीं गाये तो तुमने अपना मानुष जन्म अकारथ कर दिया। इसलिए श्री गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि हे मन ! परमात्मा के नाम का इसप्रकार सुमिरण कर

जैसे मछली जल का सुमिरण करती है। अर्थात् जैसे जल ही मछली का जीवन आधार है वैसे ही परमात्मा का नाम तुम्हारे जीवन का आधार बन जाना चाहिये।"

कथा है—एक राजा बड़ा ही भगवद्भक्त और सन्त-सेवी था। पूर्ण महापुरुषों के उपदेशानुसार राज्य के दायित्व को निभाते हुए वह सदा नाम-सुमिरण और भजन-भक्ति में लीन रहता था। उसके यहाँ प्रायः सत्संग होता रहता था और सन्त महापुरुषों की शुभ संगति का वह लाभ प्राप्त करता रहता था। राजा की एक कन्या थी। प्रारम्भ से ही सन्तों महापुरुषों की संगति मिलने से उसके हृदय में नाम और भक्ति की लगन लग गई थी। जब उसकी आयु लगभग दस-ग्यारह वर्ष की थी, उस समय की बात है कि एक त्योहार पर उसकी धाय ने उसे बधाई दी। राजकुमारी ने अपनी अंगुली से मूल्यवान् अंगूठी उतारकर उसे पुरस्कार में दे दी। अंगूठी पाकर धाय ने उसे आशीर्वाद दिया—"तेरी उम्र लम्बी हो।"

राजकुमारी ने हँसते हुए कहा—"लम्बी आयु प्राप्त करने से क्या होगा?"

धाय—"तू युवा हो जायेगी।"

राजकुमारी—"फिर क्या होगा?"

धाय—"फिर अन्य देश के किसी राजा के साथ धूमधाम से तेरा विवाह हो जायेगा।"

राजकुमारी—"फिर क्या होगा?"

धाय—"तू रानी बनकर उस घर में राज करेगी और शरीर

के हर प्रकार के सुखभोग तुझे प्राप्त होंगे।"

राजकुमारी—"फिर क्या होगा?"

धाय—"फिर तेरे बाल-बच्चे होंगे।"

राजकुमारी—"फिर क्या होगा?"

धाय—"फिर तेरे बाल-बच्चों के भी बाल-बच्चे हो जायेंगे और तू दादी-नानी बन जायेगी।"

राजकुमारी—"फिर क्या होगा?"

राजकुमारी के बार-बार 'फिर क्या होगा, फिर क्या होगा' कहने से धाय चिढ़ गई। उसने झुंझलाते हुए कहा—"फिर क्या होगा? फिर यही होगा कि तू वृद्धा हो जायेगी, तेरे अंग-प्रत्यंग शिथिल हो जायेंगे, बाल पक जायेंगे तथा कमर झुक जायेगी और फिर एक दिन ऐसा भी आयेगा जब मृत्यु तुझे ग्रस लेगी और तेरा नामो-निशान सदा के लिए इस संसार से मिट जायेगा। यही सबके साथ होता आया है और यही तेरे साथ भी होगा।"

कोई अन्य होता तो शायद धाय की बातों पर क्रोधित हो उठता, परन्तु राजकुमारी तो विचारवान थी, इसलिए क्रोध करने की बजाय वह हँस पड़ी। उसने हँसते हुए धाय से कहा—"बस! इसी के लिए तू मुझे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दे रही है। यदि जीवन में मात्र यही कुछ करना है तो फिर पशु में और मुझ में अन्तर ही क्या रहा? पशु भी तो खाते-पीते हैं, वे भी तो शरीर-इन्द्रियों के भोग भोगते हैं, उनके भी तो बाल-बच्चे होते हैं, वे भी वृद्ध होते हैं और फिर काल का ग्रास बन जाते हैं। मैंने भी यदि यही कुछ किया तो फिर मनुष्य जन्म से,

जिसे सब योनियों से श्रेष्ठ एवं उत्तम कहा गया है, मैंने क्या लाभ उठाया ? मनुष्य जन्म का ऐसा स्वर्णिम एवं दुर्लभ अवसर प्राप्त करके भी यदि नाम और भक्ति की कमाई न की तो समझो अपना लोक और परलोक—दोनों ही बिगाड़ लिये। मनुष्य की ऐसी कार्यवाही पर तो सन्तों ने धिक्कार डाली है।

॥ दोहा ॥

धृग खाना धृग पहनना, धृग सारा व्यवहार ।
सत्तनाम सुमिरै बिना, जीवन है बेकार ॥
जन्म बिताइयो बावरे, पशु ज्यों पाली देह ।
सत्तनाम सुमिरै बिना, अन्त पड़ै मुख खेह ॥

इसलिए यदि तुमने मुझे आशीर्वाद देना ही है तो यह आशीर्वाद दे कि मैं चाहे दो दिन जीऊँ, दस दिन जीऊँ, दस वर्ष जीऊँ या सौ वर्ष जीऊँ—जितने दिन भी मैं जीऊँ, मेरा एक-एक पल, एक-एक स्वाँस परमात्मा के नाम में, भजन-ध्यान में व्यतीत हो ताकि मेरा संसार में जन्म लेना सफल एवं सकारथ हो।"

किन्तु इस बात की समझ भी मनुष्य को तभी आती है जब सौभाग्य से उसे सत्पुरुषों की पावन संगति मिल जाती है। सत्पुरुषों की कृपा से मनुष्य को जीवन के वास्तविक उद्देश्य का पता चल जाता है और वह अपने वास्तविक काम में लगकर और अपनी आत्मा का कल्याण करके अपने जीवन को सफल एवं सकारथ कर लेता है।

भजन

स्वरः—फूल तुम्हें भेजा है......॥

टेकः—बेशकीमत तन यह तेरा,
लाभ इससे उठा ले तू।
देर न कर अब तू प्यारे,
पल पल नाम कमा ले तू ॥

१–लाख चौरासी भटक भटक कर,
नर तन तूने पाया है।
भागों से यह दुर्लभ अवसर,
हाथ तेरे अब आया है।
स्वाँस स्वाँस में ऐ बन्दे,
मालिक के गुण गा ले तू ॥

२–देख तमाशे दुनिया के तू,
दिल उसमें न फँसा अपना।
मिथ्या जग के भोग पदारथ,
जैसे रैन का हो सपना।
ये फल मीठे ज़हर भरे हैं,
धोखे से खुद को बचा ले तू ॥

३–जीवन सफल बनाना है तो,
सत्पुरुषों की संगत कर ।
चरण शरण में जाके उनकी,
ले ले नाम की दात अमर ।
सेवा पूजा उनकी कर के,
प्रसन्नता को पा ले तू ॥

४–पायेगा सुख 'दासा' निश्चय,
बात यह सत-सत मान ले ।
आज्ञा मौज में चलना सदा,
दिल अपने में ठान ले ।
फिर न व्यापेगी ग़म चिन्ता,
चाहे तो आज़मा ले तू ॥
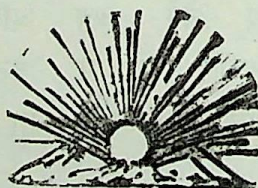
भक्त गाथा

भक्त दामोदर और उनकी धर्मपत्नी

बहुत पहले की बात है—कांची (दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध नगर) में एक निर्धन ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था दामोदर। भक्त दामोदर भगवान् के अनन्य भक्त, साधु सेवी तथा परम सन्तोषी थे। वे विवाहित थे, परन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। उनकी धर्मपत्नी भी उन्हीं की तरह सन्तोषी, भक्तिभाव सम्पन्न तथा साधु-सेवी थी। भिक्षा ही उस ब्राह्मण दम्पति के जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन था। भक्त दामोदर तथा उन की पत्नी—दोनों प्रभात समय ही उठ जाया करते और स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् की पूजा-आराधना में निमग्न हो जाते। सूर्योदय के उपरान्त भक्त दामोदर भगवान् का नाम लेकर नगर की ओर निकल जाते और भिक्षा माँग लाते। ब्राह्मणी भोजन तैयार करती और दोनों भगवान् का प्रसाद समझकर भोजन ग्रहण करते। यदि किसी दिन कोई साधु-महात्मा आ जाता तो अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा से उसे भोजन कराते। यदि कुछ बच जाता तो प्रसाद पा लेते, अन्यथा जल पीकर सन्तोष कर लेते और भजन-सुमिरण में मग्न हो जाते। उनके हृदय में भगवान की भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई कामना नहीं थी।

स्वर्णकार जब सोने को सुन्दर आभूषण का रूप देने लगता है तो पहले सोने को अग्नि में तपाता है जिससे उसकी चमक बढ़ जाती है। ठीक इसी प्रकार भगवान् भी अपने प्रेमी भक्तों की महिमा को संसार में उजागर करने के लिए कोई न कोई कौतुक रचकर उन्हें परीक्षा की अग्नि में से निकालते हैं। यही भक्त दामोदर तथा उनकी पत्नी के साथ भी हुआ। भगवान् ने अपने प्रेमी भक्तों की परीक्षा लेने का विचार किया और एक वृद्ध संन्यासी का रूप धारण कर वे उनकी टूटी-फूटी झोंपड़ी के द्वार पर जा पहुँचे।

उस दिन संयोग से भक्त दामोदर को भिक्षा में कुछ भी प्राप्त न हुआ था। पति-पत्नी दोनों जल पीकर भगवान की महिमा गायन करने लगे। तभी द्वार पर किसी ने कांपते हुए स्वर से आवाज़ दी—"दामोदर भक्त! ओ दामोदर भक्त!"

आवाज़ सुनकर भक्त दामोदर बाहर आये। क्या देखते हैं कि एक अत्यन्त दुर्बल वृद्ध संन्यासी लाठी पकड़े द्वार पर खड़ा है। दुर्बलता के कारण उसकी टांगें काँप रही हैं और मुख से आवाज़ नहीं निकल रही है, परन्तु मस्तक पर अलौकिक तेज विद्यमान है। भक्त दामोदर कभी उसके तेजोमय मुख की ओर देखते और कभी कृशकाय दुर्बल शरीर की ओर। तभी वृद्ध संन्यासी ने काँपती हुई आवाज़ में कहा—"क्या दामोदर भक्त का घर यही है?"

भक्तजी ने बड़ी ही श्रद्धा से संन्यासी के चरणों में दण्डवत्-प्रणाम किया, धूली मस्तक पर लगाई और फिर दोनों हाथ जोड़कर विनय की—"हाँ प्रभो! दामोदर का टूटा-फूटा

झोंपड़ा यही है और आपका सेवक दामोदर आपके चरणों में उपस्थित है।"

वृद्ध संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा, तो तुम्हीं भक्त दामोदर हो जिसकी चारों ओर कीर्ति फैली हुई है कि वह भगवान् का अनन्य भक्त और बड़ा ही साधु-सेवी है। तुम्हारी ख्याति सुनकर ही मैं यहाँ आया हूँ। मुझे बड़े ज़ोर की भूख लग रही है, भूख के मारे खड़ा तक नहीं हुआ जाता। कुछ भोजन का प्रबन्ध करो जिससे कि जान में जान आये। वैसे तो नगर में कहीं भी भोजन मिल जाता, परन्तु मेरा यह स्वभाव है कि मैं हर किसी के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करता। श्रद्धालु भक्तों के घर का तो मैं रूखा-सूखा भोजन भी प्रेम से ग्रहण कर लेता हूँ, परन्तु जो भगवान् के प्रेमी नहीं, जिनके हृदय में भक्ति का निवास नहीं, उनके घर के नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों को भी मैं हाथ नहीं लगाता। तुम चूँकि भगवान् के अनन्य भक्त हो, इसीलिये मैं तुम्हारे द्वार पर आया हूँ यद्यपि मेरा शरीर अत्यन्त दुर्बल है और मुझसे चला भी नहीं जाता।

भगवान के उपरोक्त कथन पर यदि ध्यान दिया जाये तो कुछ बातें सामने आती हैं जिनकी चर्चा कर देना यहाँ उचित है। पहली बात तो यह कि भगवान् ने अपने वचनों में यह स्पष्ट कर दिया कि वे भावहीन स्वादिष्ट व्यंजनों के भूखे नहीं, अपितु प्रेम के भूखे हैं। इसलिए प्रेम और श्रद्धा से खिलाया गया रूखा-सूखा भोजन भी उन्हें प्रिय लगता है। सन्त पलटूदास जी इस विषय में कथन करते हैं कि:—

॥ कुण्डलिया ॥

साहिब के दरबार में केवल भगति पियार ॥
केवल भगति पियार साहिब भक्ति में राजी ।
तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी ॥
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई ।
खाये सेवरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई ॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा ।
मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा ॥
पलटू ऊँची जाति को जनि कोउ करै हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भगति पियार ॥

इससे स्पष्ट है कि भगवान् केवल प्रेमाभक्ति के ही भूखे हैं। भगवान् स्वयं फ़रमाते हैं किः—

भाव का भूखा हूँ मैं और भाव ही बस सार है ।
भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है ॥
अन्न धन और वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिये ।
आप हो जावे मेरा बस पूर्ण यह सत्कार है ॥
भाव बिन सब कुछ भी दे डालो तो मैं लेता नहीं ।
भाव से इक पुष्प भी दो तो मुझे स्वीकार है ॥
जो मुझी में भाव रखकर लेते हैं मेरी शरण ।
उनके और मेरे हृदय में रहता एक तार है ॥

यह तो हुई पहली बात। दूसरी बात जो विचारणीय है वह यह है कि भगवान् ने यद्यपि बातों ही बातों में अपना परिचय दे दिया और अपने विषय में सब कुछ कह दिया, परन्तु फिर भी

भक्त दामोदर इस भेद को न समझ सके और समझते भी कैसे ? जब तक भगवान् स्वयं न चाहें, उनकी रहस्यभरी बातों को कौन समझ सकता है । श्री रामचरितमानस में वर्णन है किः—

॥ चौपाई ॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे ।
विधि हरि शंभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा ।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन ।
जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥

अयोध्याकाण्ड

महर्षि बाल्मीकि जी भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज के चरणों में निवेदन करते हैं कि हे प्रभो ! यह जगत् दृश्य है और आप उसके देखने वाले हैं । आप ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर को भी नचाने वाले हैं । जब वे भी आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जानने वाला है ? आपको वही जान सकता है, जिसे कृपा करके आप स्वयं जना देते हैं और आपको जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है । हे प्रभो ! हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चन्दन ! आपकी कृपा से ही भक्त आपके मर्म को जान पाते हैं, अन्यथा आपको कौन जान सकता है ?

भक्त दामोदर भी भगवान् को पहचान न सके । उन्होंने

भगवान को एक साधारण संन्यासी ही समझा और विनय की—"भगवन्, चलिये ! भीतर पधारिये और मुझ दीन-हीन की इस टूटी-फूटी झोंपड़ी को पवित्र कीजिये ।"

वृद्ध संन्यासी झोंपड़ी के अन्दर प्रविष्ट हुए । भक्त दामोदर ने तुरन्त कुश का आसन बिछा दिया । संन्यासी रूप भगवान् आराम से उस आसन पर विराजमान् हो गए। तब भक्त दामोदर ने पत्नी को जल लाने के लिये कहा । जल आ जाने पर उन्हों ने संन्यासी के चरण पखारे और भक्त जी तथा उनकी धर्मपत्नी—दोनों ने चरणामृत का पान किया । तत्पश्चात् भक्त जी उन के चरण दबाने लगे और उनकी पत्नी संन्यासी जी को पंखा करने लगी । तब संन्यासी जी ने कहा—"तुम लोग जाओ और शीघ्र भोजन का प्रबन्ध करो, मुझे बड़ी भूख लगी है । तब तक मैं थोड़ा आराम करता हूँ ।"

उन दोनों के उठते ही भगवान् खुर्राटे भरने लगे । अब भक्त दामोदर और उनकी पत्नी को चिंता हुई कि संन्यासी जी के लिए भोजन का प्रबन्ध कहाँ से और कैसे हो । घर में अन्न का दाना भी न था, न ही कोई बर्तन अथवा अन्य ऐसी वस्तु थी जिसे बाज़ार में बेचा जा सके । बर्तनों के नाम पर तो एक मिट्टी की हांडी, लकड़ी की कलुछी और तवा था तथा बदन पर थे फटे-पुराने कपड़े, फिर बाज़ार में बेचें तो क्या बेचें । और कोई उपाय न देखकर भक्त दामोदर ने ब्राह्मणी से कहा—"मैं नगर में भिक्षा के लिए जाता हूँ । भगवान् चाहेंगे तो कुछ न कुछ मिल ही जाएगा ।"

ब्राह्मणी बोली—"आज सुबह भी भिक्षा में आपको कुछ

नहीं मिला। जब सुबह ही आप खाली हाथ लौटे हैं तो इस समय कुछ मिलने की क्या आशा है ? क्या पता इस समय भी भिक्षा में कुछ मिले या न मिले। फिर संन्यासी जी को भूख भी लगी है, इसलिए व्यर्थ समय न नष्ट कीजिये। मुझे एक उपाय सूझा है। आप नाई से कैंची माँग लाइये और उससे मेरे बालों को काट लीजिए। फिर हम दोनों मिलकर उससे वेणी (बालों की चोटी) बाँधने की डोरी बट लेंगे। उसे बाज़ार में बेचकर जो दाम मिलेंगे, उससे अतिथि के भोजन का प्रबन्ध सुगमता से हो जायेगा।"

साधु-सेवा के लिए ब्राह्मणी का ऐस । त्याग देखकर भक्त दामोदर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब ब्राह्मणी बोली—"इसमें प्रशंसा की क्या बात है ? साधु-सन्तों की सेवा तो बड़े ही पुण्य प्रताप से नसीब होती है। उनकी सेवा में तो यदि प्राण भी निछावर करने पड़ें तो भी कम है।"

भक्तजी नाई के घर गये और उससे कैंची मांग लाये। कैंची से उन्होंने ब्राह्मणी के सिर के बाल काटने आरम्भ किये और चारों ओर थोड़े-थोड़े बाल छोड़कर शेष बाल काट लिये। तत्पश्चात् दोनों ने मिलकर उसकी डोरी बटी और फिर भक्त दामोदर उसे बेचने के लिये बाज़ार की ओर चल पड़े। भगवान् की कृपा से शीघ्र ही ग्राहक भी मिल गया जिसने वह डोरी खरीद ली। उससे जो पैसे भक्त जी को मिले, उन पैसों से उन्होंने दाल-चावल लिये और शीघ्र घर आये। ब्राह्मणी ने झटपट दाल-चावल तैयार कर दिये। लीलामय भगवान् ने जब देखा कि भोजन तैयार हो गया है तो वे अपने स्थान पर उठकर बैठ गये

और भक्त दामोदर को आवाज़ देकर पूछा —"भक्त जी ! भोजन तैयार हुआ कि नहीं ?"

भक्त जी ने निवेदन किया—"प्रभो ! भोजन तैयार है; आप हाथ-मुँह धो लें।"

हाथ-मुँह धोकर त्रिभुवनपति भोजन करने बैठे। एक केले के पत्ते पर भक्त जी ने भोजन परोस दिया। संन्यासी जी भोजन करने लगे और भक्त दामोदर उन्हें पंखा करने लगे। धीरे-धीरे वे सारा भोजन गटक गये, एक दाना भी दाल-चावल का उन्होंने शेष न छोड़ा। भक्त दामोदर तथा उनकी पत्नी को अपनी भूख की तनिक भी चिंता न थी, उन्हें तो बस यही चिंता थी कि कहीं संन्यासी जी को भोजन कम न रह जाए। किन्तु जब अन्तिम ग्रास खाकर उन्होंने लम्बी डकार ली और यह कहा कि बस ! अब कुछ नहीं चाहिये, अब हम तृप्त हुए, तब जाकर ब्राह्मण दम्पति ने चैन की सांस ली।

भोजन कर लेने के उपरान्त संन्यासी जी पुनः आराम करने लगे। यह देखकर भक्त दामोदर ने पंखा पत्नी को दे दिया और स्वयं उनके चरण दबाने लगे। काफी देर नींद के उपरांत संन्यासी जागे और बोले—"मैं तुम लोगों की सेवा से बहुत सन्तुष्ट हूँ। अब दिन ढलने वाला है, मेरा शरीर भी अत्यन्त दुर्बल है, इसलिए यदि तुम लोगों को कष्ट न हो तो मैं रात यहीं व्यतीत कर लूँ, प्रातः होने पर चला जाऊँगा।"

भक्त जी ने विनय की—"महाराज ! इसमें कष्ट की कौन सी बात है ? यह तो हमारा सौभाग्य है कि आप हमें सेवा का

सुअवसर प्रदान कर रहे हैं।"

संन्यासी जी ने कहा—"तब फिर ठीक है। आज रात हम यहीं विश्राम करते हैं।"

भक्त जी को पुनः संन्यासी जी के भोजन की चिंता हुई। यह देखकर ब्राह्मणी ने कहा—"आप चिंता क्यों कर रहे हैं? कैंची ले आइये और मेरे सिर के बाकी के बाल भी काट डालिये। साधु-सेवा का ऐसा अवसर क्या बार-बार मिलेगा?"

ब्राह्मणी ने अपने सिर के शेष बाल भी उतरवा दिये और सिर को एक चीथड़े से ढक लिया। बालों की फिर डोरी बटी गई और उसके पैसों से पुनः सामान आ गया। भोजन बना और संन्यासी रूप भगवान् सुबह की तरह फिर सबका सब चट कर गये; उन दोनों के लिये कुछ भी न छोड़ा।

भोजन कर चुकने के उपरांत भगवान पुनः विश्राम करने लगे। यह देखकर भक्त दामोदर और उनकी पत्नी फिर संन्यासी जी की सेवा में लग गए। भक्त जी भगवान के चरण दबाने लगे और उनकी पत्नी पंखा करने लगी। कुछ ही पलों में भगवान जब खुर्राटे भरने लगे तो ब्राह्मणी ने भक्त जी से बड़े ही धीमे शब्दों में कहा—"आज तो सिर के बालों की डोरी बटने से भोजन का जैसे-तैसे प्रबन्ध हो गया, परन्तु अब कल क्या होगा? कल सुबह ये जाने के लिये कह रहे हैं, परन्तु इन्हें बिना भोजन कराये विदा करना तो किसी तरह भी उचित नहीं। इस लिये कल के भोजन का कोई उपाय सोचना चाहिये।"

भक्त जी बोले—"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ । अन्य कोई उपाय तो मेरी समझ में आता नहीं, यही करूँगा कि कल मुँह-अन्धेरे ही भिक्षाटन के लिये निकल जाऊँगा । भगवान् ही हमारी लाज रखेंगे ।"

भक्त दामोदर तथा उनकी धर्मपत्नी तो प्रत्येक साधु-महात्मा की सेवा उन्हें भगवान् का रूप समझकर ही किया करते थे, क्योंकि उनके विचार में सन्तों में तथा भगवान् में कोई अन्तर नहीं था, परन्तु उन्हें क्या पता था कि आज साक्षात् भगवान् संन्यासी का वेष धारण कर उनके घर पर विराजमान् हैं ।

थोड़ी देर तक तो पति-पत्नी बातें करते रहे, फिर उन्हें नींद ने आ घेरा और वे सो गये । भगवान् यद्यपि दिखाने के लिए सो रहे थे, परन्तु वास्तविकता यह थी कि वे जाग रहे थे और अपने प्रेमियों की सब बातचीत सुन रहे थे । दोनों का प्रेम, श्रद्धा, भक्ति तथा सेवाभावना से वे अति प्रसन्न हुए । वे अपने स्थान से उठ खड़े हुए । उन्होंने पहले उन दोनों की ओर देखा और फिर उस जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी की ओर । उनकी करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा । भगवान की कृपादृष्टि की देर थी कि देखते ही देखते वहाँ का सब नक्शा पलट गया । झोंपड़ी के स्थान पर एक विशाल भवन था । भक्त दामोदर के शरीर पर मूल्यवान् वस्त्र थे । उनकी पत्नी के शरीर पर भी सुन्दर रेशमी वस्त्र और रत्नजड़ित मूल्यवान आभूषण थे । सिर पर काले घुँघराले बाल थे । भवन में सब प्रकार के सुख-सुविधा के सामान तथा नौकर-चाकर थे ।

भगवान ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और अपनी रचना से

सन्तुष्ट होकर उन दोनों के सिर पर प्यार भरा हाथ फेरा और अन्तर्धान हो गए।

प्रातःकाल जब ब्राह्मणी जागी तो झोंपड़ी के स्थान पर विशाल भवन और अपने शरीर पर मूल्यवान् वस्त्राभूषण देखकर चौंक उठी। पहले तो उसने यह समझा कि वह कोई स्वप्न देख रही है। उसने अपनी बाँह में ज़ोर की चुटकी काटी तो उसे पीड़ा का अनुभव हुआ। वह समझ गई कि यह सब सपना नहीं है। तब उसने अपने पति की ओर देखा तो उसे भी सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित पाया। उसने दामोदर को जगाया, तो वह भी पहले तो सारी रचना देखकर हक्का-बक्का रह गया, फिर सब कुछ समझ गया कि यह सब भगवान की माया है और वे संन्यासी कोई और नहीं, स्वयं परमेश्वर थे। वह अभी इन्हीं विचारों में खोया हुआ था कि उसकी पत्नी बोली—"शीघ्र ही उन संन्यासी महाराज का पता लगाइये। वे अवश्य ही कोई असाधारण साधु थे।"

किन्तु भक्त दामोदर की आँखों से तो गंगा-यमुना बह रही थी। उन्होंने पत्नी से कहा—"भाग्यवान! उन सर्वेश्वर प्रभु को मैं कहाँ खोजने जाऊँ? वे कोई संन्यासी तो थे नहीं, वे तो स्वयं भगवान् थे जो अतिथि बनकर हमारे घर पधारे थे, परन्तु हम उन्हें साधारण संन्यासी ही समझते रहे। हम जी भरकर न तो उनके दर्शन कर पाये और न ही सेवा-सत्कार। भगवान ने शायद हमें इस योग्य नहीं समझा। उन्होंने हमें अपने दुर्लभ दर्शन देने की अपेक्षा ये जो धन-सम्पदा और सुख-सुविधा के सामान प्रदान किये इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे हृदय

में सूक्ष्म रूप से इनकी कामना विद्यमान थी।"

तत्पश्चात् दोनों ही व्याकुल होकर भगवान के चरणों में प्रार्थना करने लगे—"प्रभो ! हमें यह विशाल भवन, ये मूल्यवान् वस्त्र, ये रत्नजड़ित आभूषण तथा ये सुख-सुविधा के सामान नहीं चाहियें। प्रभो ! ये सब कुछ ले लो, परन्तु एक बार अपने मनोहर दर्शन दे दो।"

किसी सन्त ने ऐसे ही प्रेमी के हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हुये कहा है कि:—

नहीं चाहिये मुझको दुनिया की दौलत,
नहीं चाहिये मुझको सामाने-इशरत,
नहीं चाहिये मुझको शान और शौकत,
नहीं चाहिये दो जहाँ की हकूमत,
मुझे ऐ प्रभु बस तेरा प्यार चाहिये।
सुन्दर मनोहर दीदार चाहिये॥

हे प्रभो ! मुझे संसार की धन-दौलत, शरीर-इन्द्रियों के भोगों के सामान, मान-सन्मान तथा वैभव, यहाँ तक कि दोनों लोकों का राज्य भी नहीं चाहिये। हे प्रभो ! मुझे तो केवल-केवल तुम्हारा प्यार और सुन्दर-मनोहर दर्शन चाहिये।

अस्तु दामोदर भक्त और उनकी पत्नी जब व्याकुल होकर भगवान् के चरणों में पुकार करने लगे तो उनकी व्याकुलता देखकर लीलामय प्रभु उनके सम्मुख प्रकट हो गए। भगवान् के साक्षात् दर्शन कर दोनों का जीवन धन्य हो गया। तब

भगवान् बोले—"हम तुम्हारी भक्ति, सेवा, श्रद्धा तथा प्रेम से अति प्रसन्न हैं। तुम दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करके अन्त में मेरे वैकुण्ठधाम आओगे। वहाँ तुम सदा मेरे साथ रहोगे।"

यह आशीर्वाद देकर भगवान् अन्तर्धान हो गए। भक्त दामोदर और उनकी पत्नी अब अपना एक-एक पल भगवान् के सुमिरण-ध्यान तथा साधु-सन्तों की सेवा में व्यतीत करने लगे। इतनी अधिक सम्पत्ति पाकर भी उनके हृदय में भक्ति तथा प्रेम कम न हुआ। सादा जीवन व्यतीत करते हुये वे उस धन-सम्पदा को धार्मिक कार्यों तथा साधु-सन्तों की सेवा में दिल खोलकर खर्च करने लगे। इस प्रकार उन्होंने अपना जन्म सफल एवं सकारथ किया और भगवान के धाम में अचल स्थान प्राप्त किया।

कविता

इस संसार का हर इक प्राणी,
इच्छुक रहता है सुख का ।
सच्चे सुख को पाने की ख़ातिर,
यत्न अनेक है वो करता ॥

पर इच्छा होती नहीं पूरी,
सुख से वंचित रहता है ।
ढूँढता है वो सुख दुनिया में,
सुख नहीं किंचित मिलता है ॥

चाहत दिल में यही है उसके,
सुखी रहूँ मैं जीवन भर ।
इज़्ज़त मान शान धन दौलत,
मुझ पे हो सब से बढ़कर ॥

धन दौलत तुम खूब कमाओ,
माता पिता समझाते यही ।
धन से ही सुख पाओगे तुम,
सम्बन्धी भी बताते यही ॥

धन से दुनिया के सारे सुख,
तुम हासिल कर पाओगे ।
धन के बिना तुम सारा जीवन,
दुख ही दुख उठाओगे ॥

यही शिक्षा बचपन से मिलती,
हर संसारी प्राणी को ।
धन और मान शान की खातिर,
ताते यत्न करता है वो ॥

लेकिन सुख नहीं इन चीजों में,
इसीलिए है दुख पाता ।
सुख है केवल प्रभु नाम में,
नाम से प्राणी सुख पाता ॥

मिली यह सच्ची शिक्षा ध्रुव को,
भक्तिवन्त निज माता से ।
सुखी हुआ अविचल पद पाया,
ध्रुव ने नाम को जप जप के ॥

सन्तों सत्पुरुषों से हर पल,
जीव को शिक्षा यही मिलती ।
उन की शरण में आ करके ही,
आँख विवेक की है खुलती ॥

साचा सुख है किस वस्तू में,
जीव को ज्ञान हो जाता है ।

प्रभु का नाम सुमिर कर पल पल,
साचा सुख वो पाता है ॥

साचे सुख की खान ऐ प्राणी,
केवल प्रभु का साचा नाम ।
लोक परलोक वो सुखी बनाता,
जपता है जो आठों याम ॥

हो धनाढ्य या निर्धन कोई,
नाम से ही सुख पाता है ।
नाम विहीन न पाता सुख को,
सदा ही दुख उठाता है ॥

सन्तों सत्पुरुषों की यह शिक्षा,
दासनदास ले हिरदे धार ।
स्वाँस स्वाँस प्रभु नाम को जप के,
लोक परलोक ले अपना सुधार ॥

सदुपदेश

संसार की ओर यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलता है कि प्रत्येक मनुष्य ने किसी न किसी को अपना प्रिय अथवा इष्ट मानकर अपने चित्त का सम्बन्ध उससे जोड़ रखा है और जिसको भी उसने अपना दिल दे रखा है, हर समय उसका ध्यान उसके मन में बना रहता है, उसके दिल में हर समय उसकी याद बसी रहती है।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह किसी न किसी से प्यार अवश्य करता है। प्रेम-प्यार की यह भावना उसमें स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान है और कोई भी मनुष्य इस भावना से रीता नहीं है। इस भावना के अनुरूप वह किसी न किसी से प्रेम-प्यार का सम्बन्ध जोड़ने पर अथवा किसी न किसी को प्रिय मानकर उसे अपना मन देने पर विवश है, यह बात पृथक् है कि वह मन की तार किससे जोड़ता है? अब जिसके साथ भी उसने चित्त का सम्बन्ध जोड़ा हुआ है अथवा जिसे उसने अपना मन दे रखा है, वही उसका इष्ट बन जाता है।

मनुष्य जब इस संसार में पदार्पण करता है तो पूर्व जन्मों के संस्कार अपने साथ लाता है। प्रत्येक मनुष्य के संस्कार चूँकि एक जैसे नहीं होते, अतः संस्कारों में विभिन्नता होने के कारण

उनके विचारों में विभिन्नता होना भी अनिवार्य है। यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य के अपने पृथक् पृथक् विचार हैं। एक की विचारधारा दूसरे से मेल नहीं खाती। अपनी विचारधारा के अनुरूप प्रत्येक मनुष्य की वृत्ति का झुकाव भी भिन्न-भिन्न दिशा और पदार्थ में होता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का प्रिय एवं काम्य तत्त्व पृथक्-पृथक् होता है। किसी की वृत्ति का झुकाव सन्तान की ओर है तो किसी का धन-सम्पत्ति की ओर; किसी का अपने शरीर की ओर तो किसी का किसी अन्य ओर। पुत्र को प्रिय मानने वाले के लिए पुत्र ही उसका इष्ट है और धन की चाह करनेवाले के लिये धन ही उसका इष्ट है। जिसका ध्यान शरीर की ओर है तो यूं समझो कि शरीर को ही उसने अपना इष्ट माना हुआ है। मनुष्य ने जिसे भी अपना इष्ट मान रखा हो, जिससे भी प्रेम-प्यार का सम्बन्ध जोड़कर उसे अपना दिल दे रखा हो—चाहे वह धन हो, पुत्र हो अथवा कोई अन्य तत्त्व हो—अपने प्रिय एवं काम्य तत्त्व का ध्यान उसके मन में हर समय बना रहता है।

यह आम संसारी मनुष्यों की स्थिति है। भक्तिमान् मनुष्य की बात इससे पूर्णतः भिन्न है। भक्तिमान् मनुष्य ने परमात्मा को अपना इष्ट मानकर उसे अपना मन दे रखा और उसके साथ प्रेम का गहरा सम्बन्ध जोड़ रखा होता है। इसलिए उसका ध्यान हर समय अपने इष्टदेव के चरण-कमलों में केन्द्रित रहता है और उसके जीवन की प्रत्येक कार्यवाही इष्टदेव की प्रसन्नता और निकटता प्राप्त करने के लिए होती है।

अभिप्राय यह कि आम संसारी मनुष्यों का ध्यान धन-

सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, शरीर आदि में ही केन्द्रित रहता है और इनमें ही उनका मन आसक्त होने के कारण उनके जीवन की प्रत्येक कार्यवाही इन्हीं के निमित्त होती है जबकि एक भक्तिमान् पुरुष का ध्यान अपने इष्टदेव श्री प्रभु के चरणों में केन्द्रित रहता है और उसकी प्रत्येक कार्यवाही श्री प्रभु के लिए ही होती है।

दोनों ही प्रकार के मनुष्य—आम संसारी भी तथा भक्तिमान् भी—अपने-अपने इष्ट का चिंतन-ध्यान हर समय करते रहते हैं। यह प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य जिस वस्तु का चिंतन-ध्यान हर समय करता रहता है, जिस वस्तु के लिए उसके मन में तीव्र उत्कण्ठा होती है और जिसे प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करता है, उस काम्य वस्तु की प्राप्ति उसे अवश्य होती है और उस वस्तु की निकटता अथवा सम्पर्क में आने से उसका प्रभाव भी उस मनुष्य पर अवश्य पड़ता है। प्राकृतिक नियमानुसार अपने-अपने गुणों के अनुरूप प्रत्येक पदार्थ का अपना पृथक्-प्रथक् प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए आग के निकट जाने पर गर्मी और जल के सम्पर्क में आने पर शीतलता की प्रतीति होना स्वाभाविक है, क्योंकि आग का प्रभाव गर्मी देनेवाला और जल का प्रभाव शीतलता प्रदान करनेवाला है।

संसारी मनुष्य ने धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार तथा माया के सामानों आदि को ही प्रिय, काम्य तथा ध्यान का केन्द्र बनाया हुआ है और उन्हीं के साथ अपने चित्त का सम्बन्ध जोड़ रखा है। चूंकि उसकी लगन हर समय इन्हीं पदार्थों की प्राप्ति की ओर काम करती है, इसलिए इनकी प्राप्ति तो उसे अवश्य हो

जाती हैं, परन्तु इन पदार्थों का प्रभाव चूंकि दुःखदायी है, इसलिए इन सबकी प्राप्ति के साथ-साथ मनुष्य को दुःख, अशान्ति, कलह, कलपना, क्लेश आदि की भी प्राप्ति होती है। धन-सम्पत्ति, मायिक पदार्थ तथा शरीर-इन्द्रियों के भोग आदि प्रारम्भ में मनुष्य को अवश्य सुखरूप भासते हैं, परन्तु जब उनका वास्तविक प्रभाव प्रकट होता है तब मनुष्य को होश आता है और तब वह पछताता और रोता है। शराब पीनेवाले को प्रारम्भ में अवश्य आनन्द की अनुभूति होती है, परन्तु शनैः शनैः उसका विषैला प्रभाव उसके शरीर को खोखला कर देता है और उसे सदा-सर्वदा के लिए रोगी और दुःखी बना देता है। तब मनुष्य लाख रोये और पछताये, परन्तु तब क्या होता है ? यही दशा सांसारिक तथा मायिक पदार्थों और सम्बन्धों की भी है। उनका प्रभाव भी दुःखों और चिंताओं को जन्म देनेवाला है।

सत्पुरुष अपनी वाणियों में स्पष्ट फ़रमाते हैं कि:—

धनु संपै माइया संचीऐ अंते दुखदाई ॥

गुरुवाणी

श्री गुरु रामदास जी महाराज फ़रमाते हैं कि धन-सम्पदा और माया के सामान संचित करने का परिणाम अन्ततः दुःख-कारक ही होता है।

बहु सादहु दूखु परापति होवै ॥
भोगहु रोग सु अंति विगोवै ॥

गुरुवाणी

श्री गुरु नानकदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि अधिक

स्वादग्रस्त होने से अर्थात् ऐन्द्रिक रसभोगों का अत्यधिक उपभोग करने से अधिक दुःख प्राप्त होता है; भोग-विलास रोगों को जन्म देता है। ऐन्द्रिक रसों में पड़ा हुआ जीव अन्ततः दुःखी और परेशान होता है।

दुखु खावहि दुखु संचहि भोगहि
दुख की बिरधि वधाई ॥

गुरुवाणी

श्री गुरु रामदास जी महाराज फ़रमाते हैं कि संसारी मनुष्य धन-सम्पत्ति तथा शारीरिक एवं ऐन्द्रिक भोगपदार्थ आदि एकत्र करने के लिये दुःख सहन करते हैं, दुःखों का संचय करते हैं, सदा दुःख भोगते हैं और उनके जीवन में दुःखों की ही बढ़ोतरी होती है।

मनमुख सेवा जो करे दूजे भाइ चितु लाइ ॥
पुतु कलतु कुटंबु है माइआ मोहु वधाइ ॥
दरगहि लेखा मंगीऐ कोई अंति न सकी छडाइ ॥
बिनु नावै सब दुखु है दुखदाई मोह माइ ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"मन की मति पर चलनेवाला आम संसारी मनुष्य परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरे प्राणी-पदार्थों में चित्त लगाकर उनकी सेवा में रत रहता है और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-परिवार तथा माया और माया के पदार्थों से मोह बढ़ाता है। किन्तु जब धर्मराज के दरबार में हिसाब माँगा जाता है तो उसे

कोई छुड़ा नहीं सकता। प्रभु के नाम के बिना सब दुःख ही दुःख है। संसार की मोह-ममता दुःखरूप है।"

यह है संसारी मनुष्य की चित्तवृत्ति के लगाव का परिणाम कि उन्हें इस लगाव के फलस्वरूप दुःख ही दुःख प्राप्त होता है। इसके विपरीत भक्तजन हर समय प्रभु की याद और प्रभु का ध्यान करते रहते हैं और उनके चरणों में अपने चित्त को जोड़े रखते हैं। अब श्री प्रभु चूँकि सुखराशि तथा आनन्दस्वरूप हैं, अतः उनके साथ चित्त का गहरा सम्बन्ध जुड़ जाने से उनके गुणों का प्रभाव भी भक्तों पर अवश्य पड़ता है; फलस्वरूप उन का जीवन नित्य सुख, शाश्वत आनन्द तथा परम शान्ति से भरपूर हो जाता है। सत्पुरुषों ने अपनी वाणियों में इस बात की पुष्टि की है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के वचन हैं:—

प्रभ की प्रीति सदा सुखु होइ ॥
प्रभ की प्रीति दुखु लगै न कोइ ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"प्रभु के साथ प्रीति का सम्बन्ध जोड़ने से मनुष्य को सदैव सुख तथा आनन्द की प्राप्ति होती है। प्रभु के साथ प्रीति का सम्बन्ध जोड़नेवाले को कोई दुःख स्पर्श नहीं कर सकता।"

एक अन्य स्थान पर भी फ़रमाते हैं कि:—

प्रभ चिति आवै ता कैसी भीड़ ॥
हरि सेवक नाही जम पीड़ ॥

सरब दूखु हरि सिमरत नसे ॥
जाकै संगि सदा प्रभु बसे ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"यदि प्रभु-परमात्मा हृदय में बस जाए तो मनुष्य को कोई दुःख-कष्ट नहीं सताता। प्रभु के सेवक को यमदूत भी कष्ट नहीं पहुँचा सकते। प्रभु के स्मरणमात्र से ही सब प्रकार के दुःखों का नाश हो जाता है, क्योंकि परमात्मा सदैव उसके अंग-संग रहते हैं।"

इतना अन्तर है धन-सम्पत्ति, माया के पदार्थों तथा कुटुम्ब परिवार से चित्त का नाता जोड़ने में तथा परमात्मा के चरण-कमलों में प्रीति करने और उनसे चित्त का सम्बन्ध जोड़ने में कि जहाँ धन-सम्पत्ति तथा कुटुम्ब-परिवार आदि के साथ लगाव रखने से दुःख, चिंता और अशान्ति की प्राप्ति होती है, वहाँ परमात्मा से प्रीत करने और उनके साथ चित्त का सम्बन्ध जोड़ने से मनुष्य को नित्य सुख और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है और सब प्रकार के (आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक) दुःखों से छुटकारा मिलता है।

दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि इन पदार्थों का प्रभाव केवल इसी जन्म तक सीमित नहीं रहता, प्रत्युत अगले जन्म पर भी इनका प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इनके साथ चित्त का गहरा लगाव होने से और हर समय इनका चिंतन-सुमिरण करने से अन्तकाल में भी इन्हीं का ध्यान मनुष्य के चित्त में बना रहता है। अन्तकाल में जिस वस्तु में उसकी सुरति अटकी रह

जाती है, उसी के अनुसार उसे अगला जन्म मिलता है। इस विषय में सन्त सहजोबाई जी का कथन है कि:—

॥ दोहा ॥

देह छुटै मन में रहै, सहजो जैसी आस।
देह जन्म तैसो मिलै, तैसे ही घर वास॥

॥ चौपाई ॥

जाकी आस रहै मन्दिर में। होकर घूँस बसै सो घर में॥
रहै बासना द्रव्य मंझारा। जन्मै नाग होय पुनि कारा॥
रहै बासना तिरिया माहीं। कोटी स्वान धरै तन आहीं॥
रहै बासना पुर्षा वर की। कुतिया होय चूहड़े घर की॥
जाकी रहै पुत्र में आसा। सूवर जन्म नीच घर वासा॥
जाका मन रहै राज दुवारे। हस्ती हो सिर मेलै छारे॥
रहै बासना नीर पियासी। मीन देह धरि जल की वासी॥
रहै बासना वाहन संगा। होय जन्म ले वाहन अंगा॥
जहाँ वासना जित ही जाई। यह मत वेद पुरानन गाई॥

इसके विपरीत जिसका चित्त हर समय परमात्मा के साथ जुड़ा रहता है और जो परमात्मा का ही सदा सुमिरण-ध्यान करता रहता है, अन्तकाल में यही सुमिरण-ध्यान बना रहने से वह अन्ततः परमात्मा में ही जा समाता है। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज भक्त अर्जुन के प्रति फ़रमाते हैं कि:—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

श्रीमद्भगवद्गीता ८।५

अर्थः—"जो पुरुष अन्तकाल में मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।"

इसीलिए सत्पुरुषों का जीव के प्रति हितकारी सदुपदेश है कि:—

हरि सिउ जुरै त सभु को मीतु ॥
हरि सिउ जुरै त निहचलु चीतु ॥
हरि सिउ जुरै न विआपै काढ़ा ॥
हरि सिउ जुरै त होइ निसतारा ॥१॥
रे मन मेरे तूँ हरि सिउ जोरु ॥
काजि तुहारै नाही होरु ॥१॥ रहाउ ॥

गुरुबाणी

अर्थः—"जब मनुष्य परमात्मा से प्रीति का नाता जोड़ता है तो हर कोई उसे अपना मित्र दिखता है, उसका चित्त निश्चल हो जाता है, दुःख-चिंता आदि उसे नहीं व्यापते और संसार-समुद्र से उसका उद्धार हो जाता है। इसलिए हे मेरे मन! तू एकमात्र परमात्मा के साथ अपनी प्रीति का नाता जोड़। औरों के साथ की हुई प्रीति तेरे किसी काम नहीं आयेगी।"

धन्य हैं वे भक्तजन, जिन्होंने अपने चित्त का सम्बन्ध एकमात्र प्रभु-परमात्मा के साथ जोड़ा हुआ है और उनकी प्रीति को ही दिल में बसाया हुआ है। ऐसे प्रेमी भक्त अपना यह

जीवन भी सुख-आनन्द से व्यतीत करते हैं और अपना परलोक भी सुखमय बना लेते हैं।

आवश्यक सूचना

सभी पाठकों को सूचित किया जाता है कि मासिक पत्रिका आनन्द सन्देश तथा स्प्रीचुअल ब्लिस के चन्दे की रकम भेजते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि १०० रुपये से कम रकम केवल मनीआर्डर द्वारा ही भेजें इससे अधिक रकम भेजनी हो तो बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर आनन्द सन्देश कार्यालय के नाम से ही भेजें।

चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

इसीप्रकार श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का आर्डर देते समय भी ध्यान रखें, चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

प्रबन्धक

आनन्द सन्देश कार्यालय

भजन

स्वरः—भूले से मुहब्बत.........॥

टेकः—तुझे मोह माया से बचायें जो, दुनिया में ऐसे सन्त ही हैं।
प्रेमाभक्ति का पाठ पढ़ायें जो, जीवों के हितैषी सन्त ही हैं॥

१—नहीं अपना कोई मीत तेरा, तू दिल है सदा जिनको देता।
तुझे सच का ज्ञान करायें जो, ऐसे पर उपकारी सन्त ही हैं॥

२—इस जग की सराय में भूला, क्या मकसद था यहाँ आने का।
तुझे सत् मारग दरशायें जो, ऐसे तो दयालु सन्त ही हैं॥

३—सतगुरु जी सच्ची शरण में तेरी, हर कर्म-रेख कट जाती है।
सूली का काँटा बनायें जो, ऐसे पूर्ण समर्थ तो सन्त ही हैं॥

४—दिल जोड़ना पूरण सतगुरु से, उत्तम भाग्यों की निशानी है।
चरणकमलों की छाँव बिठायें जो, तेरे अपने 'दासा' सन्त ही हैं॥

श्री अमर वाणी

(मनुष्य शरीर)

विधाता ने जीव को यह जो मनुष्य-शरीर प्रदान किया है, इसके वास्तविक मूल्य एवं महत्त्व को जानना और इस अनमोल रत्न की परख-पहचान करना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है कि यह कैसा अनुपम, अलौकिक एवं अमूल्य शरीर मनुष्य को प्रदान किया गया है जिसके मन-मस्तिष्क में अण्ड-ब्रह्मण्ड का नक्शा भर दिया है। प्रकृति की सब शक्तियां और सब पदार्थ इसके मस्तिष्क में समाए हुए हैं, परन्तु उस पर ताला लगा हुआ है जिसकी चाबी गुरु के पास है। इसलिए पूर्ण गुरु के बिना उसकी चाबी नहीं मिल सकती और बिना चाबी के द्वार नहीं खुल पाता जैसा कि फ़रमान है:—

गुरु कुँजी पाहु निवलु मनु कोठा तनु छति ।।
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुँजी हथि ।।

गुरुबाणी

कोई कितना ही उच्च श्रेणी का मस्तिष्क रखता हो, परन्तु जब तक वह किसी मार्गदर्शक से नहीं मिल लेता और उसके उपदेशानुसार आचरणमय कार्यवाही नहीं करता, उसके मन-मस्तिष्क से वे नक्शे, जो उसके अन्दर भरे हुए हैं, प्रकट नहीं

हो सकते ।

एक बच्चा कुछ भी नहीं जानता, परन्तु जब कुछ समय तक अध्यापकों के पथ-प्रदर्शन में चलता है तो वही अनपढ़ बच्चा हर प्रकार की विद्याओं में निपुण हो जाता है। जिस विद्या के जानने वाले का मार्गदर्शन प्राप्त करता है, उसी प्रकार की विद्या अथवा हुनर उससे प्रकट होने लगता है। इसीलिए कोई इंजीनियर बन जाता है, कोई डाक्टर, कोई दार्शनिक तथा कोई कुछ और बन जाता है। अभिप्राय यह कि उसके अन्दर संसार के सब हुनर, विद्यायें तथा विद्वता भरी हुई है, परन्तु जब तक उसे निपुण शिक्षक का मार्गदर्शन प्राप्त नहीं होता, उसके मन-मस्तिष्क पर ताला लगा रहता है। जब गुरु धारण कर लेता है, उससे ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ कर देता है, तब वह उस ज्ञान से सम्बन्धित सब तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर लेता है। जब तक जानकार शिक्षक की संगत नहीं करता, उसकी सब विद्यायें छिपी पड़ी रहती हैं।

जैसे संसार अथवा शरीर से सम्बन्धित विद्यायें अन्दर भरी हुई हैं वैसे ही उससे अति सूक्ष्म, मूल्यवान् और अपनी वास्तविक वस्तु भी मनुष्य के शारीरिक ढांचे के अन्दर विद्यमान है जिसे आत्मा अथवा रूह कहा जाता है। उसका ज्ञान प्राप्त करना भी अत्यावश्यक है।

जैसे पहले वर्णन हुआ है कि शारीरिक विद्या के लिए निपुण शिक्षक की आवश्यकता है तो क्या आध्यात्मिक विद्या अथवा आत्मिक ज्ञान की जानकारी के लिए आध्यात्मिक शिक्षक की आवश्यकता न होगी? आत्मिक ज्ञान की जानकारी प्राप्त

करने के लिए आध्यात्मिक गुरु की भी अत्यन्त आवश्यकता है। उनकी कृपा से ही मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकेगा, जो कि प्रत्येक मनुष्य का आवश्यक तथा अनिवार्य कर्त्तव्य है।

प्रत्येक मनुष्य अपने अन्दर झांक कर देख सकता है कि क्या वह केवल शरीर है? सत्पुरुषों की संगत में आने पर ही उसे पता चलता है कि वह मात्र शरीर नहीं, अपितु इस शरीर को चलानेवाली सत्ता है जिसकी शक्ति से शरीर तथा शरीर के सब अंग कार्य करते हैं। उसी सत्ता के कारण मनुष्य में देखने, सुनने, बोलने, पकड़ने तथा चलने-फिरने अर्थात् प्रत्येक कार्य करने की शक्ति उत्पन्न होती है। जब शरीर से वह आत्मसत्ता विलग हो जाती है तब वही शरीर निर्जीव हो जाता है। तब न आँखें देख सकती हैं, न जिह्वा बोल सकती है, न कान सुन सकते हैं न हाथ-पांव हिल सकते हैं और न ही शरीर कोई चेष्टा कर सकता है।

अभिप्राय यह कि आत्मा की सत्ता अथवा शक्ति के कारण ही मनुष्य अपने शरीर से हरप्रकार के काम लेता है, उसके बिना यह शरीर निर्जीव हो जाता है। जो शरीर एक दिन निष्प्राण हो जाता है, उसकी जानकारी के लिए शारीरिक विद्या की आवश्यकता जबकि मनुष्य अनुभव करता है तो जो वास्तविक सत्ता अर्थात् आत्मा है, क्या उसे जानने की आवश्यकता नहीं? आवश्यकता है और बहुत अधिक आवश्यकता है।

जन्म-जन्म में शारीरिक विद्या पढ़कर मनुष्य को क्या

मिला? यही कि शारीरिक सुख, इन्द्रियों के रसभोग आदि, जिन

के परिणामस्वरूप वह चौरासी लाख योनियों में भरमता रहा है। क्या आप नहीं देखते कि मोह-ममता में पशु-पक्षी भी ग्रस्त हैं ? एक छोटी-सी चिड़िया को भी बच्चों से मोह है। उसमें भी लोभ-लालच और काम-क्रोधादि विद्यमान हैं। एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि तथा अहंकार सब योनियों में विद्यमान है। यदि मनुष्य ने भी यही कुछ किया और सम्पूर्ण आयु शारीरिक कार्य-व्यवहार में ही व्यस्त रहा तो फिर इसमें विशेषता क्या हुई ?

मनुष्य जन्म को मालिक ने यह विशेषता प्रदान की है कि पूर्व जन्मों के कर्मों का फल भोगने के साथ-साथ यह आगे के लिए वह कर्म कर सकता है जिनके द्वारा यह जन्म-मरण के फंदे से मुक्त हो जाए, चौरासी के चक्कर से छूट कर मोक्ष पद की प्राप्ति कर ले। किन्तु यह कार्य तभी हो सकता है जब इसे आध्यात्मिक गुरु मिल जायें, उनके बिना नहीं।

पहले वर्णन हुआ है कि शारीरिक विद्या भी शिक्षक के बिना जबकि प्राप्त नहीं होती तो आत्मिक ज्ञान गुरु के बिना कैसे प्राप्त हो सकता है ? और जिस जीव ने मनुष्य शरीर धारण करके भी आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति न की तो फिर पशुओं में और उस मनुष्य में अन्तर ही क्या हुआ ? विचारवानों का कथन है कि:—

॥ दोहा ॥

निद्रा भोजन भोग भय, ये पशु पुरुष समान।
नरन ज्ञान निज अधिकता, ज्ञान बिना पशु जान॥

सारुक्तावली

नींद करना, भोजन खाना, इन्द्रियों के रस भोगना तथा भयभीत होना—ये सब बातें पशुओं में तथा मनुष्यों में समानरूप से मिलती हैं। मनुष्य में यदि बड़ाई है तो केवल इस बात की कि इसमें आत्मा का ज्ञान है। यदि यह नहीं तो मनुष्य और पशु एक समान हैं।

विचार किया जाए कि दीर्घ काल के पश्चात् मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। यदि अब भी इससे आत्मिक उन्नति का लाभ न उठाया तो क्या हाथ आया मनुष्य-जन्म से ?

चौरासी लाख योनियों में युगों तक भरमते रहने के उपरान्त अत्यधिक याचना करने पर यह दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। यदि इस जन्म में भी आत्मिक उन्नति करने का यत्न न किया, मालिक से मिलने का यह जो अवसर हाथ में आया है, यदि इस अवसर में भी मालिक को प्राप्त न किया, अपितु विषय-विकारों तथा शरीर-इन्द्रियों के भोगों में उलझ रहा तो इस स्वर्णिम अवसर को खोकर बाद में पश्चात्ताप करता रहेगा और खून के आँसू बहाता रहेगा, परन्तु तब कुछ भी न बन सकेगा।

किन्तु ये विचार मनुष्य को कब मिलते हैं ? जब वह सत्पुरुषों की संगत में आता है। आम लोग तो प्रमाद की निद्रा में सोये हुए हैं और स्वप्न देख रहे हैं। वे जितनी भी कार्यवाही कर रहे हैं, वह सब स्वप्न के सदृश है। किन्तु संसारी मनुष्य फिर भी यही कहता है कि मैं बहुत चतुर और सयाना हूँ, परन्तु सत्पुरुषों की वाणी क्या फ़रमाती है ?

सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि सयाना और चतुर वह है जो पशुओं

की स्थिति से ऊपर उठ जाए। शारीरिक आवश्यकताओं को तो पशु-पक्षी भी पूरा करने में व्यस्त रहते हैं, यदि मनुष्य भी उन्हीं धन्धों में उलझा रहा तो अन्तर ही क्या हुआ ? जब वह शरीर-इन्द्रियों से ऊपर उठकर भक्ति-परमार्थ के लिए यत्न करने लगे तब वह सयाना और चतुर है जैसा कि कथन है:—

॥ चौपाई ॥

चतुर शिरोमणि ते जग माहीं ।
जे मणि लागि सुयतन कराहीं ॥
श्री रामायण, उत्तरकाण्ड

संसार में वस्तुतः चतुर और सयाने वही हैं जो भक्तिरूपी मणि की प्राप्ति का यत्न करते हैं।

भक्ति करने से मनुष्य भगवन्त से मिल जाता है। कोई कहे कि भक्ति से क्या लाभ है तो उसे मालूम होना चाहिये कि भक्ति ही भक्त और भगवन्त को एकरूप बनाती है। भगवान् की प्राप्ति का साधन केवल भक्ति है। भगवान की याद ही उससे मेल कराती है। इससे बढ़कर और कोई उद्देश्य नहीं, इससे बढ़कर और कोई लाभ नहीं। यदि यह काम न किया तो इससे बढ़कर कोई घाटा भी नहीं है। सत्पुरुष चितावनी देते हुए फ़रमाते हैं कि:—

लख चउरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनमु पाइओइ ॥
नानक नामु समालि तूँ सो दिन नेड़ा आइओइ ॥
गुरुबाणी

चौरासी लाख योनियों में भरमते-भरमते कितने लम्बे

समय के उपरान्त दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है। ऐ जीव ! इस स्वर्णिम समय में मालिक की भक्ति और नाम में चित्त लगाकर उसी में मिल जा, अन्यथा यदि भक्ति न की तो वह दिन निकट आ रहा है जबकि तुझको फिर चौरासी के चक्कर में जाना पड़ेगा।

मनुष्य को भलीभाँति विचार करना चाहिये कि संसार के धन्धे और बड़े-बड़े कारोबार करने से जो पद और मान एकत्र किया, धन-सम्पत्ति एकत्र की, कुटुम्ब-परिवार बनाया और उनके लिये कितना परिश्रम और यत्न किया तो क्या वे सब वस्तुयें मनुष्य के साथ जायेंगी ? यदि साथ जायें और परलोक कुछ काम आयें तब तो कुछ मानने की बात हुई। यदि साथ भी न जायें और जीवन में भी उनसे कोई सच्ची खुशी प्राप्त न हो, उल्टा दुःख और चिंतायें बढ़ें तो फिर उनसे लाभ ही क्या हुआ ? उनकी झूठी मोह-ममता में फंसकर मनुष्य अपने दुर्लभ जन्म को क्यों नष्ट करे ? वह कार्य क्यों न करे जिससे जीवन भी सुख से व्यतीत हो और परलोक भी सुहेला हो जाए ?

भक्ति के बिना यदि सांसारिक पदार्थों से मनुष्य को इस लोक में ही सच्चा सुख और शान्ति मिल सकती तो भी महापुरुष भक्ति करने पर इतना ज़ोर न देते, परन्तु वास्तविकता यह है कि भक्ति और नाम की कमाई के बिना जीव को न यहाँ सुख मिलता है और न परलोक में सम्मान मिलता है। असत् वस्तुओं का सत् वस्तु से मेल ही नहीं। सोने के साथ सोना तो एक-रूप हो सकता है, परन्तु लोहा कभी सोने से नहीं मिल सकता।

मालिक का नाम सत् है और जीवात्मा भी सत् है। इसलिए

दोनों एकरूप हो सकते हैं। संसारी पदार्थ असत् हैं, इसलिए वे और आत्मा एकरूप नहीं हो सकते। महापुरुष जीव को हर समय चिताते और सावधान करते रहते हैं कि मनुष्य शरीर केवल-केवल भक्ति और नाम की कमाई के लिए मिला है, इसलिए इस स्वर्णिम अवसर से लाभ उठा लो।

संसार के नश्वर सामान केवल उपयोग के लिए हैं। शरीर भी नश्वर है तथा संसार के सामान भी नश्वर हैं। शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने की मना नहीं, परन्तु उन्हीं पदार्थों में चित्त फँसाकर उन्हीं का हो रहना और मालिक की याद तथा भक्ति को भूल जाना, यह गलती और अज्ञानता है, क्योंकि यह अनमोल जीवन केवल-केवल मालिक की प्राप्ति के लिए ही मिला है न कि संसार के धन्धों के लिए। सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि:—

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

गुरुवाणी

मनुष्य देह मालिक से मिलने की बारी है। किन्तु आम संसारी मनुष्यों ने क्या समझ रखा है, इस बात पर भलीभाँति विचार करना चाहिये। परन्तु मनुष्य का मन उसे सही निर्णय नहीं करने देता, इधर-उधर के बहकावे देता है। समझदार मनुष्य को मन के बहकावे में कदापि नहीं आना चाहिये। मनुष्य खाली हाथ आता है और खाली हाथ चला जाता है, फिर

इस कदर जंजाल बढ़ाने से लाभ ही क्या हुआ ? मनुष्य वह काम क्यों न करे जो अन्त में साथ दे और परलोक में काम आए। इसीलिए महापुरुष फ़रमाते हैं किः—

अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

मनुष्य जिन कामों में रुचि देता है, वे काम दिल पर अंकित हो जाते हैं। यदि संसार के कामों की दिल पर छाप पड़ गई तो फिर मालिक के दरबार में उत्तर देना पड़ेगा। महापुरुष फ़रमाते हैं कि हाथ-पाँव से बेशक संसार के धन्धे करते रहो, परन्तु चित्त में हर समय मालिक का सुमिरण-ध्यान बसाये रखो ताकि चित्त पर मालिक के नाम की छाप दृढ़ हो जाए। मालिक के धाम में इस कार्य के अतिरिक्त और कोई कार्य काम नहीं आयेगा।

इसलिए महापुरुष सदैव यही उपदेश फ़रमाते हैं कि ऐ जीव! सत्संगति में मालिक के नाम और भक्ति की कमाई कर जिससे कि संसार में भी सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत हो और परलोक में भी मुख उज्ज्वल हो। मनुष्य जन्म का लक्ष्य भी यही है कि मनुष्य अपनी आत्मा की पहचान करे और परमात्मा से मिल कर एक हो जाये ताकि जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाकर सदा के लिए मुक्तरूप हो जाए।

❀ इति शुभम भवतु ❀

जन कल्याण केन्द्र
श्री आनन्दपुर ट्रस्ट

श्री परमहंस अद्वैत मत के आदर्श-सदाचार, निष्काम कर्मयोग एवं आत्म-बोध से भक्ति व सुमिरण ध्यान द्वारा अनेकों जिज्ञासु एवं अनुयायी प्रभावित हुए। भक्ति और सेवा के मार्ग पर चल कर आत्मिकोन्नति के लिये अनेकों प्रोत्साहित हुये।

ट्रस्ट द्वारा व्यवस्थित श्री आनन्दपुर ट्रस्ट धर्मार्थ अस्पताल एवं विविध चिकित्सालय श्री परमहंस अद्वैत मत के महान आदर्शों का अनुसरण करते हुए, अपनी निष्काम सेवाओं से जन साधारण को अधिक प्रभावित कर रहे हैं। ग्रामीण दरिद्र, पिछड़ी हुई जातियों के लोग, हरिजन एवं बिना किसी जाति भेद व वर्ण भेद के सभी रोगी, पीड़ाग्रस्त व गरीब जन इन निष्काम सेवाओं से लाभान्वित हुये हैं।

पिछले छः महीनों में श्री आनन्दपुर ट्रस्ट धर्मार्थ अस्पताल एवं श्री आनन्दपुर, अशोकनगर, ग्वालियर, इन्दौर के चिकित्सालयों में तीव्र गतिविधियां दृष्टिगोचर होती रही हैं। लगभग एक लाख रोगी अस्पताल व चिकित्सालयों की सेवाओं से लाभान्वित हुए।

इस दौरान—नेत्र, अस्थि विकलांग, कान, नाक, गले के कुछ असाधारण ऑपरेशन किए गए जिनकी रोगियों ने, उनके सम्बन्धियों ने एवं जन-साधारण ने अधिक सराहना की।

निःशुल्क नेत्र शिविर अक्तूबर ६५ से नवम्बर ६५ तक निर्दिष्ट है। इन्ट्राऑक्युलर लेन्स के लिए इस शिविर में सेवायें उपलब्ध होंगी। विशिष्ट नेत्र सर्जन इस शिविर में सम्मिलित होंगे। भक्त, जिज्ञासु भी इस नेत्र शिविर की सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं।

इस वर्ष श्री आनन्दपुर ट्रस्ट शिक्षण संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। प्रथम बार पाँचवी कक्षा की सरकारी बोर्ड परीक्षा ली गई।

श्री आनन्दपुर माध्यमिक विद्यालय के २० छात्र परीक्षा के लिए बैठे और सभी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, जो कि इस ज़िले में विरल उपलब्धि थी। इस विद्यालय के परीक्षा फल सदैव उत्कृष्ट रहे हैं एवं आठवीं कक्षा के बोर्ड परीक्षा के भी परीक्षाफल इसी प्रकार रहे हैं। इस वर्ष इस विद्यालय के सात छात्रों का केन्द्रीय विद्यालय, खिरिया देवात के लिए चुनाव हुआ।

आनन्द प्राथमिक विद्यालय (माध्यम अंग्रेजी) के १६ छात्र पाँचवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा के लिए बैठे। इस विद्यालय को इस जिले के अन्यान्य अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। सभी छात्रों ने विशेष योग्यता प्राप्त की, जिनमें से दस छात्रों को ६० प्रतिशत अंक प्राप्त हुए।

श्री आनन्दपुर ट्रस्ट

OCTOBER 1995 Regd. No. MP/GUNA/5
R. No. 13072/57 Licence No. 1

भक्ति, प्रेम, परमार्थ, वैराग्य तथा शान्ति
का सन्देश वाहक

मासिक आनन्द-सन्देश

पढ़िये और अपनी आत्मिक प्यास बुझाईये

(१) यह मासिक पत्र श्री आनन्दपुर में तीन भाषाओं हिन्दी, उर्दू तथा सिन्धी में प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त 'SPIRITUAL BLISS' नाम से अंग्रेजी में भी मासिक पत्र छपता है।

(२) आनन्द सन्देश, पाठकों को प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली तारीख को भेज दिया जाता है। २० तारीख तक अंक न मिलने पर अपने डाकखाने से पता करें, तत्पश्चात् कार्यालय को सूचित करें।

(३) आर्डर देते समय जिस भाषा में तथा जिस मास के अंक की आवश्यकता हो स्पष्ट लिखें।

(४) पत्र-व्यवहार करते समय अपने चिट नम्बर का हवाला देना आवश्यक है।

(५) पता-परिवर्तन की सूचना २० तारीख तक कार्यालय को अवश्य भेज दें, जिससे कि समय पर कार्यवाही की जा सके।

पताः— आनन्द सन्देश कार्यालय
पो० श्री आनन्दपुर ज़िला गुना (म० प्र०)
पिन ४७३-३३८